Chapter पन्द्रह

बलि महाराज द्वारा स्वर्गलोक पर विजय

इस अध्याय में बताया गया है कि बलि ने विश्वजित यज्ञ सम्पन्न करने के बाद किस तरह वरदान के रूप में एक रथ तथा युद्ध की विविध सामग्री प्राप्त की और उसकी सहायता से उसने स्वर्ग के राजा इन्द्र पर किस तरह चढ़ाई की। सारे देवता उसके भय से स्वर्गलोक छोड़-छोड़कर अपने गुरु के आदेशानुसार दूर-दूर चले गये।

महाराज परीक्षित यह जानना चाहते थे कि भगवान् वामनदेव ने किस प्रकार बलि महाराज से तीन पग भूमि लेने के बहाने उससे सब कुछ ले लिया और उसे बन्दी बना लिया। शुकदेव गोस्वामी ने इस जिज्ञासा का उत्तर इस प्रकार दिया : जैसाकि इस स्कंध के ग्यारहवें अध्याय में वर्णन किया जा चुका है, असुरों तथा देवताओं की लड़ाई में बलि महाराज पराजित हुए और युद्ध में मारे गये, किन्तु शुक्राचार्य की कृपा से वे पुन: जीवित हो गए। इस तरह वे अपने गुरु शुक्राचार्य की सेवा करने लगे। भृगुवंशी उन पर प्रसन्न हो गए और उन्होंने उन्हें *विश्वजित-यज्ञ* में लगा दिया। जब यह यज्ञ सम्पन्न हुआ

तो उस यज्ञ-अग्नि से एक रथ, घोड़े, एक पताका, एक धनुष, कवच तथा बाणों के दो तरकस प्रकट हुए। बलि महाराज के पितामह महाराज प्रह्लाद ने उन्हें फूलों की एक शाश्वत माला दी और शुक्राचार्य ने एक शंख दिया। तब प्रह्लाद, ब्राह्मणों एवं अपने गुरु शुक्राचार्य को नमस्कार करके उन्होंने इन्द्र से युद्ध करने के लिए तैयारी की और वे अपने सैनिकों सहित इन्द्रपुरी गये। अपना शंख बजाकर उन्होंने इन्द्र के राज्य की सीमाओं पर आक्रमण कर दिया। बलि महाराज के शौर्य को देखकर इन्द्र अपने गुरु बृहस्पति के पास गया और उनसे बलि के पराक्रम की चर्चा की तथा पूछा कि वह क्या करे। बृहस्पति ने देवताओं को बताया कि चूँकि बलि को ब्राह्मणों से अद्वितीय शक्ति प्राप्त हुई थी अतएव देवता उससे युद्ध नहीं कर सकते। उनकी एकमात्र आशा भगवान् की कृपा प्राप्त करने में है। निस्सन्देह, कहीं कोई विकल्प था भी नहीं। ऐसी दशा में बृहस्पति ने देवताओं को सलाह दी कि वे स्वर्गलोक छोड़कर कहीं अदृश्य हो जाँए। देवताओं ने उनकी बात मान ली और बलि महाराज तथा उनके संगियों ने सारे इन्द्रलोक को हथिया लिया। भृगुमुनि के वंशजों ने भृगु के शिष्य बलि महाराज के प्रति अत्यन्त वत्सल होने के कारण उन्हें एक सौ अश्वमेघ यज्ञ सम्पन्न करने में लगा दिया। इस प्रकार बलि महाराज ने स्वर्गलोक के ऐश्वर्य का भोग किया।

श्रीराजोवाच

बलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद्धरिरयाचत ।
भूतेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबन्ध तम् ॥ १ ॥
एतद्वेदितुमिच्छामो महत्कौतूहलं हि नः ।
याच्ञेश्वरस्य पूर्णस्य बन्धनं चाप्यनागसः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने कहा; बलेः—बलि महाराज के; पद-त्रयम्—तीन पग; भूमेः—भूमि के; कस्मात्—क्यों; हरिः—भगवान् (वामन के रूप में) ने; अयाचत—माँगा; भूत-ईश्वरः—सारे ब्रह्माण्ड के स्वामी; कृपण-वत्—गरीब मनुष्य की तरह; लब्ध-अर्थः—दान पाकर; अपि—यद्यपि; बबन्ध—बन्दी बना लिया; तम्—उसको (बलि को); एतत्—यह सब; वेदितुम्—समझने के लिए; इच्छामः—हम इच्छा करते हैं; महत्—महान्; कौतूहलम्—उत्सुकता; हि—निस्सन्देह; नः—हमारा; याच्ञा—भीख; ईश्वरस्य—भगवान् की; पूर्णस्य—परम पूर्ण; बन्धनम्—बाँधते हुए; च—भी; अपि—यद्यपि; अनागसः—निर्दोष को।

महाराज परीक्षित ने पूछा : भगवान् सबके स्वामी हैं। तो फिर उन्होंने निर्धन व्यक्ति की भाँति बलि महाराज से तीन पग भूमि क्यों माँगी और जब उन्हें मुँहमाँगा दान मिल गया तो फिर उन्होंने बलि महाराज को बन्दी क्यों बनाया? मैं इन विरोधाभासों के रहस्य को जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ।

श्रीशुक उवाच
पराजितश्रीरसुभिश्च हापितो
हीन्द्रेण राजन्भृगुभिः स जीवितः ।
सर्वात्मना तानभजद्भृगून्बलिः
शिष्यो महात्मार्थनिवेदनेन ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; पराजित—हराया जाकर; श्रीः—ऐश्वर्य; असुभिः च—तथा प्राण का; हापितः—विहीन होकर; हि—निस्सन्देह; इन्द्रेण—राजा इन्द्र द्वारा; राजन्—हे राजा; भृगुभिः—भृगुमुनि के वंशजों द्वारा; सः—वह (बलि महाराज); जीवितः—पुनः जीवनदान दिये जाने पर; सर्व-आत्मना—पूर्णतया अधीन होकर; तान्—उनको; अभजत्—पूजा की; भृगून्—भृगुमुनि के वंशजों को; बलिः—बलि महाराज; शिष्यः—शिष्य; महात्मा—महात्मा; अर्थ-निवेदनेन—उन्हें सब कुछ देकर।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा! जब बलि का सारा ऐश्वर्य छिन गया और वे युद्ध में मारे गये तो भृगुमुनि के एक वंशज शुक्राचार्य ने उन्हें फिर से जीवित कर दिया। इससे महात्मा बलि शुक्राचार्य के शिष्य बन गये और अपना सर्वस्व अर्पित करके अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा करने लगे।

तं ब्राह्मणा भृगवः प्रीयमाणा
अयाजयन्विश्वजिता त्रिणाकम् ।
जिगीषमाणं विधिनाभिषिच्य
महाभिषेकेण महानुभावाः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (बलि महाराज को); ब्राह्मणाः—सारे ब्राह्मणों ने; भृगवः—भृगुमुनि के वंशज; प्रीयमाणाः—प्रसन्न होकर; अयाजयन्—यज्ञ सम्पन्न करने में लगा दिया; विश्वजिता—विश्वजित नामक; त्रि-नाकम्—स्वर्गलोक; जिगीषमाणम्—जीतने की इच्छा से; विधिना—विधिपूर्वक; अभिषिच्य—शुद्ध करने के बाद; महा-अभिषेकेण—महान् अभिषेक अनुष्ठान में स्नान कराकर; महा-अनुभावाः—उच्च ब्राह्मण।

भृगुमुनि के ब्राह्मण वंशज बलि महाराज पर अत्यन्त प्रसन्न हो गए जो इन्द्र का साम्राज्य जीतना चाह रहे थे। अतएव उन्होंने उन्हें अनुष्ठानपूर्वक शुद्ध करके तथा स्नान कराकर विश्वजित नामक यज्ञ करने में लगा दिया।

ततो रथः काञ्चनपट्टनद्धो
हयाश्च हर्यश्वतुरङ्गवर्णाः ।
ध्वजश्च सिंहेन विराजमानो
हुताशनादास हविर्भिरिष्टात् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; रथः—रथ; काञ्चन—सोने से युक्त; पट्ट—रेशमी वस्त्र; नद्धः—लिपटा हुआ; हयाः च—घोड़े भी; हर्यश्व-तुरङ्ग-वर्णाः—इन्द्र के घोड़ों जैसे रंग का (पीला); ध्वजः च—ध्वजा भी; सिंहेन—सिंहचिह्न से युक्त; विराजमानः—उपस्थित; हुत-अशनात्—प्रज्वलित अग्नि से; आस—था; हविर्भिः—घी की आहुति द्वारा; इष्टात्—पूजा किया।

जब यज्ञ-अग्नि में घी की आहुति दी गई तो अग्नि से स्वर्ण तथा रेशम से आच्छादित एक दैवी रथ प्रकट हुआ। साथ ही इन्द्र के घोड़ों जैसे पीले घोड़े तथा सिंह चिन्ह से अंकित एक ध्वजा प्रकट हुए।

धनुश्च दिव्यं पुरटोपनद्धं
तूणावरिक्तौ कवचं च दिव्यम् ।
पितामहस्तस्य ददौ च माला-
मम्लानपुष्पां जलजं च शुक्रः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

धनुः—धनुष; च—भी; दिव्यम्—असाधारण; पुरट-उपनद्धम्—सोने से मढ़ा; तूणौ—दो तरकस; अरिक्तौ—अच्युत; कवचम् च—तथा कवच; दिव्यम्—दिव्य; पितामहः तस्य—उसके पितामह, प्रह्लाद महाराज ने; ददौ—दिया; च—तथा; मालाम्—माला; अम्लान-पुष्पाम्—न मुरझाने वाले फूलों की; जल जम्—शंख (जल में उत्पन्न); च—भी; शुक्रः—शुक्राचार्य ने।

उस यज्ञ अग्नि से एक सुनहरा धनुष, अच्युत बाणों से युक्त दो तरकस तथा एक दिव्य कवच भी प्रकट हुए। बलि महाराज के पितामह प्रह्लाद महाराज ने उन्हें कभी न मुरझाने वाले फूलों की माला दी और शुक्राचार्य ने एक शंख प्रदान किया।

एवं स विप्रार्जितयोधनार्थ-
स्तैः कल्पितस्वस्त्ययनोऽथ विप्रान् ।
प्रदक्षिणीकृत्य कृतप्रणामः
प्रह्लादमामन्त्र्य नमश्चकार ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सः—वह (बलि महाराज); विप्र-अर्जित—ब्राह्मणों की कृपा से प्राप्त; योधन-अर्थः—युद्ध के लिए सामग्री से लैस; तैः—उन (ब्राह्मणों) के द्वारा; कल्पित—सलाह; स्वस्त्ययनः—अनुष्ठान; अथ—जिस तरह; विप्रान्—सारे ब्राह्मणों (शुक्राचार्य तथा अन्यों) को; प्रदक्षिणी-कृत्य—परिक्रमा करके; कृत-प्रणामः—नमस्कार करके; प्रह्लादम्—प्रह्लाद महाराज को; आमन्त्र्य—सम्बोधित करके; नमः-चकार—नमस्कार किया।

ब्राह्मणों की सलाह के अनुसार विशेष अनुष्ठान सम्पन्न कर चुकने तथा उनकी कृपा से युद्ध-सामग्री प्राप्त कर चुकने के बाद, महाराज बलि ने ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा की और उन्हें नमस्कार किया। उन्होंने प्रह्लाद महाराज को भी नमस्कार किया।

अथारुह्य रथं दिव्यं भृगुदत्तं महारथः ।
सुस्रग्धरोऽथ सन्नह्य धन्वी खड्गी धृतेषुधिः ॥ ८ ॥
हेमाङ्गदलसद्बाहुः स्फुरन्मकरकुण्डलः ।
रराज रथमारूढो धिष्ण्यस्थ इव हव्यवाट् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; आरुह्य—चढ़कर; रथम्—रथ पर; दिव्यम्—दैवी; भृगु-दत्तम्—शुक्राचार्य द्वारा दिया गया; महा-रथः—महान् सारथी बलि महाराज; सु-स्रक्-धरः—सुन्दर माला से सुशोभित; अथ—इस तरह; सन्नह्य—कवच से शरीर ढककर; धन्वी—धनुष से लैस होकर; खड्गी—तलवार धारण किये; धृत-इषुधिः—तरकस धारण किये; हेम-अङ्गद-लसत्-बाहुः—अपनी भुजाओं में सुनहरे कड़ों से सुशोभित; स्फुरत्-मकर-कुण्डलः—मरकत के समान चमकीले कुण्डलों से सज्जित; रराज—प्रकाशित कर रहा था; रथम् आरूढः—रथ पर चढ़कर; धिष्ण्य-स्थः—यज्ञवेदी पर स्थित होकर; इव—सदृश; हव्य-वाट्—पूज्य अग्नि।

तब शुक्राचार्य द्वारा दिये गये रथ पर सवार होकर सुन्दर माला से विभूषित बलि महाराज ने अपने शरीर में सुरक्षा-कवच धारण किया, अपने को बाणों से लैस किया, एक तलवार तथा तूणीर (तरकस) लिया। जब वे रथ में आसन ग्रहण कर चुके तो सुनहरे कड़ों से विभूषित बाहों तथा मरकत मणि के कुण्डलों से विभूषित कानों सहित वे पूजनीय अग्नि की तरह चमक रहे थे।

तुल्यैश्वर्यबलश्रीभिः स्वयूथैर्दैत्ययूथपैः ।
पिबद्भिरिव खं दृग्भिर्दहद्भिः परिधीनिव ॥ १० ॥
वृतो विकर्षन्महतीमासुरीं ध्वजिनीं विभुः ।
ययाविन्द्रपुरीं स्वृद्धां कम्पयन्निव रोदसी ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तुल्य-ऐश्वर्य—ऐश्वर्य में समान; बल—शक्ति में; श्रीभिः—तथा सौन्दर्य में; स्व-यूथैः—अपने आदमियों से; दैत्य-यूथ-पैः—तथा असुरों के प्रमुखों से; पिबद्भिः—पीते हुए; इव—मानो; खम्—आकाश को; दृग्भिः—दृष्टि से; दहद्भिः—जलती हुई; परिधीन्—सारी दिशाएँ; इव—मानो; वृतः—घिरा हुआ; विकर्षन्—आकृष्ट करती; महतीम्—महान्; आसुरीम्—आसुरी; ध्वजिनीम्—सैनिकों को; विभुः—अत्यन्त शक्तिशाली; ययौ—गया; इन्द्र-पुरीम्—राजा इन्द्र की राजधानी में; सु-ऋद्धाम्—अत्यन्त ऐश्वर्यशाली; कम्पयन्—हिलाते हुए; इव—मानो; रोदसी—सारे संसार की धरती को।

जब वे अपने सैनिकों तथा असुर-नायकों समेत एकत्र हुए जो बल, ऐश्वर्य एवं सुन्दरता में उन्हीं के समान थे तो ऐसा लग रहा था मानो वे आकाश को निगल जायेंगे और अपनी दृष्टि से सारी दिशाओं को जला देंगे। इस तरह असुर-सैनिकों को एकत्र करके बलि महाराज ने इन्द्र की ऐश्वर्यमयी राजधानी के लिए प्रस्थान किया। निस्सन्देह, ऐसा लग रहा था मानो वे सारे जगत को कंपायमान कर देंगे।

रम्यामुपवनोद्यानैः श्रीमद्भिर्नन्दनादिभिः ।
कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ।
प्रवालफलपुष्पोरुभारशाखामरद्रुमैः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

रम्याम्—सुहावने; उपवन—फलों के बागों; उद्यानैः—तथा बगीचों से युक्त; श्रीमद्भिः—देखने में अत्यन्त सुन्दर; नन्दन-आदिभिः—यथा नन्दन; कूजत्—चहचहाते; विहङ्ग—पक्षी; मिथुनैः—जोड़ों समेत; गायत्—गाते हुए; मत्त—मतवाले; मधु-व्रतैः—मधुमक्खियों से; प्रवाल—पत्तियों का; फल-पुष्प—फूल तथा फल; उरु—भारी; भार—भार सहन करते हुए; शाखा—जिसकी शाखाएँ; अमर-द्रुमैः—अमर वृक्षों सहित।

राजा इन्द्र की पुरी सुहावने बाग बगीचों से, यथा नन्दन बाग से परिपूर्ण थी। फूलों, पत्तियों तथा फलों के भार से उनके शाश्वत वृक्षों की शाखाएँ नीचे झुकी हुई थीं। इन उद्यानों में चहकते पक्षियों के जोड़े तथा गाती मधुमक्खियाँ आती जाती थीं। वहाँ का सारा वायुमण्डल अत्यन्त दिव्य था।

हंससारसचक्राह्वकारण्डवकुलाकुलाः ।
नलिन्यो यत्र क्रीडन्ति प्रमदाः सुरसेविताः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

हंस—हंस; सारस—सारस; चक्राह्व—चकई, चकवा; कारण्डव—तथा जल मुर्गाबी; कुल—समूहों में; आकुलाः—संकुलित; नलिन्यः—कमल के फूल; यत्र—जहाँ; क्रीडन्ति—खेलते हैं; प्रमदाः—सुन्दर स्त्रियाँ; सुर-सेविताः—देवताओं द्वारा रक्षित।

उद्यानों में देवताओं द्वारा रक्षित सुन्दर स्त्रियाँ खेलती थीं जिनके कमल-ताल हंसों, सारसों, चक्रवाकों तथा बत्तखों से भरे हुए थे।

आकाशगङ्गया देव्या वृतां परिखभूतया ।
प्राकारेणाग्निवर्णेन साट्टालेनोन्नतेन च ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

आकाश-गङ्गया—आकाश गंगा नामक गंगाजल से; देव्या—सदैव पूजित देवी; वृताम्—घिरी हुई; परिख-भूतया—खाई के रूप में; प्राकारेण—चहारदीवारी से; अग्नि-वर्णेन—अग्नि की तरह; स-अट्टालेन—लड़ने के स्थानों सहित; उन्नतेन—अत्यन्त ऊँचे; च—तथा।

वह पुरी आकाशगंगा नामक गंगाजल से पूर्ण खाइयों द्वारा तथा अग्नि जैसे रंग वाली एक अत्यन्त ऊँची दीवाल से घिरी हुई थी। इस दीवाल पर लड़ने के लिए मुंडेर बने थे।

रुक्मपट्टकपाटैश्च द्वारैः स्फटिकगोपुरैः ।
जुष्टां विभक्तप्रपथां विश्वकर्मविनिर्मिताम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

रुक्म-पट्ट—सोने की पत्तरों वाले; कपाटै:—किवाड़ों से; च—तथा; द्वारै:—दरवाजों से; स्फटिक-गोपुरै:—उत्कृष्ट संगमरमर के बने फाटकों से युक्त; जुष्टाम्—जुड़े; विभक्त-प्रपथाम्—अनेक सार्वजनिक सड़कों से; विश्वकर्म-विनिर्मिताम्—स्वर्ग के शिल्पी विश्वकर्मा द्वारा निर्मित।

उसके दरवाजे ठोस सोने के पत्तरों से बने थे और फाटक उत्कृष्ट संगमरमर के थे। ये सभी विभिन्न जन-मार्गों से जुड़े थे। पूरी नगरी का निर्माण विश्वकर्मा ने किया था।

सभाचत्वररथ्याढ्यां विमानैर्न्यर्बुदैर्युताम् ।
शृङ्गाटकैर्मणिमयैर्वज्रविद्रुमवेदिभि: ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

सभा—सभाभवन; चत्वर—आंगन; रथ्य—तथा सार्वजनिक मार्गों से युक्त; आढ्याम्—ऐश्वर्यशाली; विमानै:—वायुयानों से; न्यर्बुदै:—दस करोड़ से कम नहीं; युताम्—से युक्त; शृङ्ग-आटकै:—चौराहों से युक्त; मणि-मयै:—मणियों से बना; वज्र—हीरों के बने; विद्रुम—तथा मूंगे के बने; वेदिभि:—बैठने के स्थानों सहित।

यह नगरी आँगनों, चौ मार्गों, सभाभवनों तथा कम से कम दस करोड़ विमानों से पूर्ण थी। चौराहे मोती से बने थे और भी हीरे तथा मूँगे से बने थे।

यत्र नित्यवयोरूपा: श्यामा विरजवासस: ।
भ्राजन्ते रूपवन्नार्यो ह्यर्चिर्भिरिव वह्नय: ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

यत्र—उस नगरी में; नित्य-वय:-रूपा:—सदैव सुन्दर तथा तरुण बनी रहने वाली; श्यामा:—श्यामा के गुणों वाली; विरज-वासस:—सदैव स्वच्छ वस्त्र पहने; भ्राजन्ते—चमचमाती रहती हैं; रूप-वत्—अच्छी तरह सजी हुई; नार्य:—स्त्रियाँ; हि—निश्चय ही; अर्चिर्भि:—अनेक ज्वालाओं से युक्त; इव—सदृश; वह्नय:—अग्नियाँ।

उस पुरी में नित्य सुन्दर तथा तरुण स्त्रियाँ स्वच्छ वस्त्र पहने ज्वालाओं से युक्त अग्नियों की भाँति चमक रही थीं। उन सब में श्यामा के गुण विद्यमान थे॥

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने श्यामा स्त्री के गुणों का संकेत किया है—

शीतकाले भवेदुष्णा उष्मकाले सुशीतला: ।

स्तनौ सुकठिनौ यासां ता: श्यामा: परिकीर्तिता: ॥

जिस स्त्री का शरीर शीतऋतु में अत्यन्त गरम रहे और ग्रीष्म में ठंडा रहे और जिसके स्तन साधारणत: अत्यन्त सुगठित हों वह श्यामा कहलाती है।

सुरस्त्रीकेशविभ्रष्टनवसौगन्धिकस्रजाम् ।
यत्रामोदमुपादाय मार्ग आवाति मारुत: ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

सुर-स्त्री—देवताओं की स्त्रियों के; केश—बालों से; विभ्रष्ट—गिरा हुआ; नव-सौगन्धिक—ताजे महकते फूलों से बने; स्रजाम्—फूलों की मालाओं की; यत्र—जिसमें; आमोदम्—सुगन्धि; उपादाय—ले जाकर; मार्गे—सड़कों पर; आवाति—बहता है; मारुतः—मन्द पवन।

उस पुरी की सड़कों में से होकर बहने वाला मन्द समीर देवताओं की स्त्रियों के बालों से गिरे फूलों की सुंगधि से युक्त था।

हेमजालाक्षनिर्गच्छद्धूमेनागुरुगन्धिना ।
पाण्डुरेण प्रतिच्छन्नमार्गे यान्ति सुरप्रियाः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

हेम-जाल-अक्ष—सुनहरी जाली से बनी छोटी सुन्दर खिड़कियों से; निर्गच्छत्—निकलकर, उठकर; धूमेन—धुएँ से; अगुरु-गन्धिना—अगुरु जलने से सुगन्धित; पाण्डुरेण—अत्यन्त श्वेत; प्रतिच्छन्न—ढका हुआ; मार्गे—सड़क पर; यान्ति—गुजरती हैं; सुर-प्रियाः—सुन्दर अप्सराएँ, दैवी बालाएँ।

अप्सराएँ जिन सड़कों से होकर गुजरती थीं वे अगुरु के श्वेत सुगन्धित धुएँ से ढकी हुई थीं जो सुनहरी तारकशी वाली खिड़कियों से निकल रहा था।

मुक्तावितानैर्मणिहेमकेतुभि-
र्नानापताकावलभीभिरावृताम् ।
शिखण्डिपारावतभृङ्गनादितां
वैमानिकस्त्रीकलगीतमङ्गलाम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

मुक्ता-वितानैः—मोतियों से सजे मण्डपों से; मणि-हेम-केतुभिः—मोती तथा सोने से बनी झंडियों से; नाना-पताका—तरह-तरह के ध्वजों वाला; वलभीभिः—महलों की गुम्बदों सहित; आवृताम्—ढका हुआ; शिखण्डि—मोर जैसे पक्षियों; पारावत—कबूतर; भृङ्ग—भौंरे; नादिताम्—अपनी-अपनी गुंजार करते; वैमानिक—विमानों में चढ़कर; स्त्री—स्त्रियों का; कल-गीत—सामूहिक गान से; मङ्गलाम्—कल्याण से पूरित।

नगरी में मोतियों से सजे चँदोवे की छाया पड़ रही थी और महलों की गुम्बदों में मोती तथा सोने की पताकाएँ थीं। वह नगरी सदा मोरों, कबूतरों तथा भौरों की ध्वनि से गूँजती रहती थी। उसके ऊपर विमान उड़ते रहते थे, जो कानों को अच्छे लगने वाले मधुर गीतों का निरन्तर गायन करने वाली सुन्दर स्त्रियों से भरे रहते थे।

मृदङ्गशङ्खानकदुन्दुभिस्वनैः
सतालवीणामुरजेष्टवेणुभिः ।
नृत्यैः सवाद्यैरुपदेवगीतकै-

र्मनोरमां स्वप्रभया जितप्रभाम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

मृदङ्ग—ढोल; शङ्ख—शंख; आनक-दुन्दुभि—तथा दमामों के; स्वनैः—शब्दों से; स-ताल—पूर्ण ताल में; वीणा—वीणा; मुरज—एक प्रकार का ढोल; इष्ट-वेणुभिः—वंशी की सुन्दर ध्वनि के साथ-साथ; नृत्यैः—नृत्य सहित; स-वाद्यैः—बाजों सहित; उपदेव-गीतकैः—गौण देवताओं यथा गन्धर्वों के गीतों सहित; मनोरमाम्—सुन्दर तथा सुहावना; स्व-प्रभया—अपने तेज से; जित-प्रभाम्—साक्षात् सुन्दरता जीत ली गई।.

वह नगरी मृदंग, शंख, दमामे, वंशी तथा तार वाले सुरीले वाद्ययंत्रों के समूहवादन के स्वरों से पूरित थी। वहाँ निरन्तर नृत्य चलता रहता था और गन्धर्वगण गाते रहते थे। इन्द्रपुरी की संयुक्त सुन्दरता साक्षात् सुन्दरता (छटा) को जीत रही थी।

यां न व्रजन्त्यधर्मिष्ठाः खला भूतद्रुहः शठाः ।
मानिनः कामिनो लुब्धा एभिर्हीना व्रजन्ति यत् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

याम्—नगरी की सड़कों में; न—नहीं; व्रजन्ति—जाते हैं; अधर्मिष्ठाः—अधर्मी लोग; खलाः—दुष्ट, ईर्ष्यालु; भूत-द्रुहः—अन्य जीवों पर उग्र भाव रखने वाले; शठाः—वंचक, धोखेबाज; मानिनः—झूठी प्रतिष्ठा वाले; कामिनः—कामी; लुब्धाः—लालची; एभिः—ये; हीनाः—से पूर्णतः रहित; व्रजन्ति—घूमते हैं; यत्—मार्ग पर।.

जो पापी, ईर्ष्यालु, अन्य जीवों के प्रति उग्र, चालाक, मिथ्या अभिमानी, कामी या लालची थे वे उस नगरी में प्रवेश नहीं कर सकते थे। वहाँ रहने वाले सभी निवासी इन दोषों से रहित थे।

तां देवधानीं स वरूथिनीपतिर्
बहिः समन्ताद्रुरुधे पृतन्यया ।
आचार्यदत्तं जलजं महास्वनं
दध्मौ प्रयुञ्जन्भयमिन्द्रयोषिताम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उस; देव-धानीम्—इन्द्र के निवास स्थान को; सः—वह (बलि महाराज); वरूथिनी-पतिः—सैनिकों का नायक; बहिः—बाहर; समन्तात्—सभी दिशाओं से; रुरुधे—आक्रमण किया; पृतन्यया—सैनिकों द्वारा; आचार्य-दत्तम्—शुक्राचार्य द्वारा प्रदत्त; जल-जम्—शंख को; महा-स्वनम्—उच्च स्वर; दध्मौ—बजाया; प्रयुञ्जन्—उत्पन्न करते हुए; भयम्—भय; इन्द्र-योषिताम्—इन्द्र द्वारा रक्षित सारी स्त्रियों का।.

असंख्य सैनिकों के सेनानायक बलि महाराज ने इन्द्र के इस निवास स्थान के बाहर अपने सैनिकों को एकत्र किया और चारों दिशाओं से उस पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने अपने गुरु शुक्राचार्य द्वारा प्रदत्त शंख बजाया जिससे इन्द्र द्वारा रक्षित स्त्रियों के लिए भयावह स्थिति उत्पन्न हो गई।

मघवांस्तमभिप्रेत्य बलेः परममुद्यमम् ।
सर्वदेवगणोपेतो गुरुमेतदुवाच ह ॥ २४॥

शब्दार्थ

मघवान्—इन्द्र; तम्—स्थिति को; अभिप्रेत्य—समझकर; बलेः—बलि महाराज के; परमम् उद्यमम्—महान् उत्साह; सर्व-देव-गण—सभी देवताओं द्वारा; उपेतः—साथ-साथ; गुरुम्—गुरु को; एतत्—निम्नलिखित शब्द; उवाच—कहा; ह—निस्सन्देह।

बलि महाराज के अथक प्रयास को देखकर तथा उसके मन्तव्य को समझकर राजा इन्द्र अन्य देवताओं के साथ अपने गुरु बृहस्पति के पास गये और इस प्रकार बोले।

भगवन्नुद्यमो भूयान्बलेर्नः पूर्ववैरिणः ।
अविषह्यमिमं मन्ये केनासीत्तेजसोर्जितः ॥ २५॥

शब्दार्थ

भगवन्—हे भगवान्; उद्यमः—उत्साह; भूयान्—महान्; बलेः—बलि महाराज का; नः—हमारा; पूर्व-वैरिणः—पुराना शत्रु; अविषह्यम्—असह्य; इमम्—यह; मन्ये—मैं सोचता हूँ; केन—किसके द्वारा; आसीत्—पाया; तेजसा—तेज; ऊर्जितः—प्राप्त किया गया।

हे प्रभु! हमारे पुराने शत्रु बलि महाराज में अब नया उत्साह पैदा हो गया है और उसने ऐसी आश्चर्यजनक शक्ति प्राप्त कर ली है कि हमारा विचार है कि हम उसके तेज का शायद प्रतिरोध नहीं कर सकते।

नैनं कश्चित्कुतो वापि प्रतिव्योढुमधीश्वरः ।
पिबन्निव मुखेनेदं लिहन्निव दिशो दश ।
दहन्निव दिशो दृग्भिः संवर्ताग्निरिवोत्थितः ॥ २६॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एनम्—इस व्यवस्था को; कश्चित्—कोई भी; कुतः—कहीं से भी; वा अपि—या तो; प्रतिव्योढुम्—सामना करने के लिए; अधीश्वरः—समर्थ; पिबन् इव—मानो पी रहे हों; मुखेन—मुख से; इदम्—यह (जगत); लिहन् इव—मानो चाट रहा हो; दिशः दश—दसों दिशाएँ; दहन् इव—मानो जल रही हों; दिशः—सारी दिशाएँ; दृग्भिः—अपनी दृष्टि से; संवर्त-अग्निः—संवर्त अग्नि; इव—सदृश; उत्थितः—उठी है।

कोई कहीं भी बलि की इस सैन्य व्यवस्था का सामना नहीं कर सकता। अब ऐसा प्रतीत होता है जैसे बलि सारे विश्व को अपने मुँह से पी जाना चाह रहा हो, अपनी जीभ से दसों दिशाओं को चाट जाना चाह रहा हो और अपने नेत्रों से प्रत्येक दिशा में अग्निकाण्ड करने का प्रयास कर रहा हो। निस्सन्देह, वह संवर्तक नामक प्रलयंकारी अग्नि के समान उठ पड़ा है।

ब्रूहि कारणमेतस्य दुर्धर्षत्वस्य मद्रिपोः ।

ओजः सहो बलं तेजो यत एतत्समुद्यमः ॥ २७॥

शब्दार्थ

बूहि—कृपा करके हमें बतायें; कारणम्—कारण; एतस्य—इसका; दुर्धर्षत्वस्य—दुर्धर्षता का; मत्-रिपोः—मेरे शत्रु का; ओजः—पराक्रम; सहः—शक्ति; बलम्—बल; तेजः—प्रभाव; यतः—जहाँ से; एतत्—यह सब; समुद्यमः—प्रयास।

कृपया मुझे बतायें कि बलि महाराज की शक्ति, उद्यम, प्रभाव तथा विजय का क्या कारण है? वह इतना उत्साही कैसे हो गया है?

श्रीगुरुरुवाच

जानामि मघवञ्छत्रोरुन्नतेरस्य कारणम् ।
शिष्यायोपभृतं तेजो भृगुभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ २८॥

शब्दार्थ

श्री-गुरुः उवाच—बृहस्पति ने कहा; जानामि—जानता हूँ; मघवन्—हे इन्द्र; शत्रोः—शत्रु की; उन्नतेः—उन्नति का; अस्य—उसका; कारणम्—कारण; शिष्याय—शिष्य को; उपभृतम्—प्रदत्त; तेजः—शक्ति; भृगुभिः—भृगुवंशियों द्वारा; ब्रह्म-वादिभिः—सर्वशक्तिमान ब्राह्मणों द्वारा।

देवताओं के गुरु बृहस्पति ने कहा : हे इन्द्र! मैं वह कारण जानता हूँ जिससे तुम्हारा शत्रु इतना शक्तिशाली बन गया है। भृगुमुनि के ब्राह्मण वंशजों ने उनके शिष्य बलि महाराज से प्रसन्न होकर उन्हें ऐसी अद्वितीय शक्ति प्रदान की है।

तात्पर्य : देवताओं के गुरु बृहस्पति ने इन्द्र को बताया ''सामान्यतया बलि तथा उसकी सेना को ऐसी शक्ति नहीं मिल सकती थी, किन्तु ऐसा लगता है कि भृगुमुनि के ब्राह्मण वंशजों ने बलि महाराज से प्रसन्न होकर उन्हें यह आध्यात्मिक शक्ति प्रदान की है।'' दूसरे शब्दों में, बृहस्पति ने इन्द्र को यह बताया कि बलि महाराज का तेज उसका अपना नहीं, अपितु उसके पूज्य गुरु शुक्राचार्य का है। हम नित्य ही स्तुति करते हैं—*यस्य प्रसादाद् भगवत् प्रसादो यस्याप्रसादान् न गतिः कुतोऽपि।* गुरु के प्रसन्न होने पर मनुष्य को अद्वितीय शक्ति, विशेषतया आध्यात्मिक उन्नति के लिए, प्राप्त होती है। गुरु के आशीष ऐसी उन्नति के लिए किये जाने वाले निजी प्रयास से अधिक शक्तिशाली होते हैं। अतएव नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं—

गुरु-मुख-पद्म-वाक्य चित्तेते करिया ऐक्य

आर ना करिह मने आशा

विशेषतया आध्यात्मिक उन्नति के लिए मनुष्य को चाहिए कि गुरु के प्रामाणिक आदेशों का पालन करे। इस प्रकार परम्परा पद्धति से मनुष्य को ईश्वर से प्राप्त होने वाली मूल आध्यात्मिक शक्ति मिल

सकती है (*एवं परम्पराप्राप्तम् इमं राजर्षयो विदुः*) ।

ओजस्विनं बलिं जेतुं न समर्थोऽस्ति कश्चन
भवद्विधो भवान्वापि वर्जयित्वेश्वरं हरिम् ।
विजेष्यति न कोऽप्येनं ब्रह्मतेजःसमेधितम्
नास्य शक्तः पुरः स्थातुं कृतान्तस्य यथा जनाः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

ओजस्विनम्—इतना शक्तिशाली; बलिम्—बलि महाराज को; जेतुम्—जीतने के लिए; न—नहीं; समर्थः—सक्षम; अस्ति—है; कश्चन—कोई; भवत्-विधः—तुम्हारी तरह; भवान्—तुम स्वयं; वा अपि—या तो; वर्जयित्वा—को छोड़कर; ईश्वरम्—परम नियन्ता; हरिम्—भगवान् को; विजेष्यति—जीतेगा; न—नहीं; कः अपि—कोई भी; एनम्—उसको (बलि महाराज को); ब्रह्म-तेजः-समेधितम्—ब्रह्मतेज से समन्वित; न—नहीं; अस्य—उसके; शक्तः—समर्थ; पुरः—सामने; स्थातुम्—ठहरने के लिए; कृत-अन्तस्य—यमराज के; यथा—जिस तरह; जनाः—लोग ।

न तो तुम, न ही तुम्हारे सैनिक परमशक्तिशाली बलि को जीत सकते हैं। निस्सन्देह, भगवान् के अतिरिक्त कोई भी उसे जीत नहीं सकता क्योंकि वह अब ब्रह्मतेज से युक्त है। जिस तरह यमराज के समक्ष कोई टिक नहीं पाता उसी तरह बलि महाराज के सामने भी कोई नहीं टिक सकता।

तस्मान्निलयमुत्सृज्य यूयं सर्वे त्रिविष्टपम् ।
यात कालं प्रतीक्षन्तो यतः शत्रोर्विपर्ययः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; निलयम्—अदृश्य; उत्सृज्य—त्यागकर; यूयम्—तुम; सर्वे—सभी; त्रि-विष्टपम्—स्वर्ग का राज्य; यात—अन्यत्र चले जाओ; कालम्—काल की; प्रतीक्षन्तः—प्रतीक्षा करते हुए; यतः—जिससे; शत्रोः—तुम्हारे शत्रु की; विपर्ययः—विपरीत दशा आ जाये ।

अतएव तुम सबको चाहिए कि अपने शत्रुओं की स्थिति के पलटने के समय तक प्रतीक्षा करते हुए इस स्वर्गलोक को छोड़ दो और कहीं ऐसे स्थान में चले जाओ जहाँ तुम दिखाई न दो।

एष विप्रबलोदर्कः सम्प्रत्यूर्जितविक्रमः ।
तेषामेवापमानेन सानुबन्धो विनङ्क्ष्यति ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह (बलि महाराज); विप्र-बल-उदर्कः—अपने में निहित ब्राह्मण शक्ति के कारण उन्नति करने वाला; सम्प्रति—इस समय; ऊर्जित-विक्रमः—अत्यन्त शक्तिशाली; तेषाम्—उन्हीं ब्राह्मणों के; एव—निस्सन्देह; अपमानेन—अपमान से; स-अनुबन्धः—अपने मित्रों तथा सहायकों सहित; विनङ्क्ष्यति—विनष्ट हो जायेगा ।

इस समय बलि ब्राह्मणों द्वारा प्रदत्त आशीषों के कारण अत्यन्त शक्तिशाली बन गया है,

किन्तु बाद में जब वह इन्हीं ब्राह्मणों का अपमान करेगा तो वह अपने मित्रों तथा सहायकों सहित विनष्ट हो जायेगा।

तात्पर्य : बलि महाराज तथा इन्द्र परस्पर शत्रु थे। अतएव जब देवताओं के गुरु बृहस्पति ने भविष्यवाणी की कि जिन ब्राह्मणों की कृपा से बलि महाराज इतने प्रबल हुए थे उनका अपमान करने पर वे विनष्ट हो जायेंगे तो बलि महाराज के शत्रु सचमुच यह जानने के लिए उत्सुक हो गए कि यह उपयुक्त क्षण कब आयेगा। इन्द्र को शान्त करने के लिए बृहस्पति ने उसे विश्वास दिलाया कि वह समय अवश्य आयेगा क्योंकि बृहस्पति यह देख सकते थे कि भविष्य में बलि महाराज होते वामनदेव के रूप में भगवान् विष्णु को शान्त करने के लिए शुक्राचार्य के आदेशों का उल्लंघन करेंगे। निस्सन्देह, कृष्णभावनामृत में अग्रसर होने के लिए भक्त सारे संकटों को मोल ले सकता है। वामनदेव को प्रसन्न करने के लिए बलि महाराज ने अपने गुरु शुक्राचार्य के आदेशों का उल्लंघन करने का संकट उठाया। इसके कारण उन्हें अपनी सारी सम्पत्ति खोनी पड़ी, किन्तु भगवान् की भक्ति के कारण उन्हें आशा से अधिक लाभ हुआ और भविष्य में आठवें मन्वन्तर में वे इन्द्र के सिंहासन पर पुन: आसीन हुए।

एवं सुमन्त्रितार्थास्ते गुरुणार्थानुदर्शिना ।
हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुर्गीर्वाणा: कामरूपिण: ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सु-मन्त्रित—भलीभाँति उपदेश पाकर; अर्था:—कर्तव्यों के विषय में; ते—वे (देवता); गुरुणा—अपने गुरु द्वारा; अर्थ-अनुदर्शिना—उपयुक्त आदेश; हित्वा—त्यागकर; त्रि-विष्टपम्—स्वर्ग का साम्राज्य; जग्मु:—गये; गीर्वाणा:—देवतागण; काम-रूपिण:—जो इच्छानुसार कोई भी रूप धारण कर सकते थे।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस प्रकार बृहस्पति द्वारा अपने हित का उपदेश दिये जाने पर देवताओं ने तुरन्त उनकी बातें मान ली। उन्होंने इच्छानुसार रूप धारण किया और वे स्वर्गलोक को छोड़कर असुरों की दृष्टि से ओझल होकर तितर-बितर हो गये।

तात्पर्य : *कामरूपिण:* शब्द बताता है कि स्वर्गलोक के निवासी देवतागण अपनी इच्छानुसार कोई भी रूप धारण कर सकते हैं। अतएव उनके लिए असुरों की आँखों के सामने अज्ञात रूप में रहते जाना तनिक भी कठिन न था।

देवेष्वथ निलीनेषु बलिर्वैरोचन: पुरीम् ।

देवधानीमधिष्ठाय वशं निन्ये जगत्त्रयम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

देवेषु—सारे देवता; अथ—इस तरह से; निलीनेषु—अदृश्य हो जाने पर; बलिः—बलि महाराज; वैरोचनः—विरोचन का पुत्र; पुरीम्—स्वर्ग के राज्य को; देव-धानीम्—देवताओं के निवास स्थान को; अधिष्ठाय—अधिकार में करके; वशम्—नियंत्रण में; निन्ये—ले लिया; जगत्-त्रयम्—तीनों लोकों को।

जब देवतागण ओझल हो गये तो विरोचन के पुत्र बलि महाराज स्वर्ग में प्रविष्ट हुए और वहाँ से उन्होंने तीनों लोकों को अपने अधिकार में कर लिया।

तं विश्वजयिनं शिष्यं भृगवः शिष्यवत्सलाः ।
शतेन हयमेधानामनुव्रतमयाजयन् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस (बलि महाराज को); विश्व-जयिनम्—समग्र विश्व के विजेता को; शिष्यम्—शिष्य होने के कारण; भृगवः—भृगु वंशज, यथा शुक्राचार्य के; शिष्य-वत्सलाः—शिष्य से अत्यन्त प्रसन्न होकर; शतेन—एक सौ के द्वारा; हय-मेधानाम्—अश्वमेध यज्ञों के; अनुव्रतम्—ब्राह्मणों के आदेशों का पालन करते हुए; अयाजयन्—सम्पन्न कराया।

भृगु के ब्राह्मण वंशजों ने अपने विश्वविजयी शिष्य से अत्यधिक प्रसन्न होकर उसे एक सौ अश्वमेघ यज्ञ सम्पन्न करने में लगा दिया।

तात्पर्य : महाराज पृथु एवम् इन्द्र के बीच के झगड़े में हम देख चुके हैं कि जब महाराज पृथु ने एक सौ अश्वमेध यज्ञ करने चाहे तो इन्द्र उसे रोकना चाहते थे क्योंकि ऐसे महान् यज्ञों के कारण ही इन्द्र स्वर्ग का राजा बना था। यहाँ पर भृगु के ब्राह्मण वंशजों ने निश्चय किया कि यद्यपि महाराज बलि इन्द्रासन पर विराजमान हैं, तथापि वे तब तक उस पर स्थिर नहीं रह सकेंगे जब तक वे यज्ञ न कर लें। अतएव उन्होंने सलाह दी कि वे कम से कम इन्द्र जितने अश्वमेध यज्ञ करें। *अयाजयन्* शब्द सूचित करता है कि सभी ब्राह्मणों ने बलि महाराज को ऐसे यज्ञ सम्पन्न करने के लिए प्रेरित किया।

ततस्तदनुभावेन भुवनत्रयविश्रुताम् ।
कीर्तिं दिक्षुवितन्वानः स रेज उडुराडिव ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; तत्-अनुभावेन—ऐसे महान् यज्ञ सम्पन्न करने से; भुवन-त्रय—तीनों लोकों में; विश्रुताम्—विख्यात; कीर्तिम्—कीर्ति; दिक्षु—सभी दिशाओं में; वितन्वानः—फैली हुई; सः—वह (बलि महाराज); रेजे—तेजवान् हो गया; उडुराट्—चन्द्रमा; इव—समान।

जब बलि महाराज ने इन यज्ञों को सम्पन्न कर लिया तो उनकी कीर्ति तीनों लोकों में सभी दिशाओं में फैल गई। इस प्रकार वे अपने पद पर उसी प्रकार चमक उठे जिस तरह आकाश में

चमकीला चाँद।

बुभुजे च श्रियं स्वृद्धां द्विजदेवोपलम्भिताम् ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामना: ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

बुभुजे—भोग किया; च—भी; श्रियम्—ऐश्वर्य; सु-ऋद्धाम्—सम्पन्नता; द्विज—ब्राह्मणों के; देव—देवताओं के तुल्य; उपलम्भिताम्—पक्षपात के कारण अर्जित; कृत-कृत्यम्—उसके कार्यों से अत्यन्त सन्तुष्ट; इव—सदृश; आत्मानम्—स्वयं को; मन्यमान:—सोचते हुए; महा-मना:—महान्-मस्तिष्क वाला, उदारमना।.

ब्राह्मणों के पश्चात् के कारण महात्मा बलि महाराज अपने आपको परम सन्तुष्ट मानते हुए परम ऐश्वर्यवान् तथा सम्पन्न बन गये और राज्य का भोग करने लगे।

तात्पर्य : ब्राह्मण द्विजदेव कहलाते हैं और क्षत्रिय सामान्यत: नरदेव। वास्तव में देव शब्द भगवान् का द्योतक है। ब्राह्मण भगवान् विष्णु को संतुष्ट करके प्रसन्न होने के लिए मानव समाज का मार्गदर्शन करते हैं और नरदेव कहलाने वाले क्षत्रिय उनकी सलाह से शान्ति तथा व्यवस्था बनाये रखते हैं जिससे अन्य लोग, अर्थात् वैश्य तथा शूद्र, विधि-विधानों का ढंग से पालन कर सकें। इस प्रकार लोग क्रमश: कृष्णभावनामृत तक उन्नत होते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत ''बलि महाराज द्वारा स्वर्गलोक पर विजय'' नामक पन्द्रहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।